वेदों में वैज्ञानिक तत्त्व

डॉ० स्वामी परमार्थदेव

भूमिका-

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिई सर्वतः स्मृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ।।[1]

मानव जीवन के लिये जितना ज्ञान आवश्यक है उसका मूल वेदों में मिलता है। इसलिए महर्षि मनु कहते हैं कि- 'सर्वज्ञानमयो हि सः।' महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने आर्य समाज के तीसरे नियम में वेद के विषय में बहुत सुन्दर कहा है 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।' वेदों में धर्मशिक्षा, आचारशिक्षा, सामाजिक जीवन, राजनीति, अर्थशात्र, आयुर्वेद आदि से सम्बन्धित विपुल सामग्री उपलब्ध है और ज्ञान-विज्ञान विषयक अनेक मंत्रों के प्रमाण मिलते हैं।

वेद शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करने से भी वेद विद्या पुस्तक सिद्ध होता है। उसकी निष्पति निम्नलिखित धातुओं से होती है 'विद् ज्ञाने (अदादि), विद् सत्तायाम् (दिवादि), विद्लृ लाभे (रुधादि) विद् विचारणे (चुरादि)' जिसके द्वारा मनुष्य ज्ञान प्राप्त करते हैं, जिसमें सब प्रकार का ज्ञान है, जिसके द्वारा सब पदार्थों की प्राप्ति करते हैं, जिसके सहारे से सब पदार्थों का विचार करते हैं। व्युत्पत्तिलभ्य इन अर्थों का मनन करने से वेद विज्ञानादि सभी विद्याओं का आकार सिद्ध होता है। पुरातन आचार्य संसार की सब विद्याओं के दो विभाग करते हैं- एक परा विद्या, दूसरी अपरा विद्या- जैसे कि मुण्डकोपनिषद् में कहा है-

द्वे विद्ये वेदितव्ये परा चेवापरा च।।[2] - दो विद्या जानने योग्य हैं एक परा दूसरी अपरा।

इन दोनों का स्वरूप भी वहीं कहा गया है- तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः, शिक्षा कल्यो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्यौतिषमिति अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ।।

अपरा विद्या में ऋग्वेदादि चारों वेद तथा उसके अंग-उपांग हैं और परा वह है

कि जिसके द्वारा उस अविनाशी ब्रह्म की प्राप्ति की जाती है। दूसरे शब्दों में कहना हो तो वेद के शब्दार्थ सम्बन्ध ज्ञान से प्राप्त होने वाली विद्या, जिसे आजकल सिद्धान्तात्मक Conceptual कहते हैं, अपरा विद्या है और जो साक्षात्कार कराने वाली व्यवहारमयी Practical विद्या है, वह परा है।

अत्र चत्वारो वेदविषयाः संन्ति विज्ञानकर्मोपासनाज्ञानकाण्ड भेदात् ।।

वेदों में विज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड के भेद से चार मुख्य विषय हैं। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है इन चारों में विज्ञानकाण्ड प्रधान है। उस विज्ञानकाण्ड में भी ईश्वरानुभव मुख्य है। हमारे इस कथन का समर्थन स्वामी दयानन्द सरस्वती के इन वचनों से होता है-

"तत्रादिमो विज्ञानविषयो हि सर्वेभ्यो मुख्योऽस्ति, तस्य परमेश्वरादारभ्य तृणपर्यन्तपदार्थेषु साक्षाद् बोधान्वयात्। तत्रापीश्वरानुभवो मुख्योऽस्ति" ।।[3]

इन चारों विषयों में विज्ञानविषय ही मुख्य है, क्योंकि परमेश्वर से लेकर तृणपर्यन्त सब पदार्थों का साक्षात् ज्ञान कराना विज्ञान का कार्य है और उनमें भी ईश्वरानुभव मुख्य है।

सनत्कुमार के पास जब नारद ने जाकर कहा- 'अधीहि भो भगवः'

महाराज! मुझे उपदेश दीजिए।

तब सनत्कुमार ने पूछा-पहले यह बताओ, तुम क्या पढ़े हो। इसपर नारद ने अपने अधीत का परिगणन किया। उसने कहा-

"ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदसामवेदमाधर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पश्चमं वेदानां वेदं, पित्र्यं राशिं देवं निधिं वाकोवाक्यमेकानं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्याम्।।"[4]

मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, वेद का रहस्य खोलनेवाला अतएव पाँचवाँ वेद (कहलाने का अधिकारी) इतिहासपुराण, पित्र्य-वायुविद्या, देव नैसर्गिक घटना का घटनाविज्ञान, निधि-भूगर्भविज्ञान, तर्कशात्र, एकायन, देवविद्या, ब्रह्मविद्या ब्राह्मणकर्म, भूतविद्याठपंचभूत विज्ञान, क्षत्रविद्या क्षत्रियकर्म-विज्ञान, नक्षत्रविद्या, सर्पविद्या तथा विषचिकित्सा-यह सब-कुछ मैंने पढ़ा है, किन्तु-

सोऽहं भगवो मंत्रविदेवास्मि नात्मवित् ।।[5]

महाराज इतना कुछ पढ़कर भी में मंत्र-शब्दमात्र का वेत्ता हूँ, आत्मवेत्ता नहीं। यह सबकुछ सुनकर सनत्कुमार ने कहा- ऋग्वेदादि सब शब्दमात्र है। साक्षात्कारी ज्ञान से

कुछ अन्य है, अर्थात् शाब्दिक एवं व्यावहारिक ज्ञानों में सदा भेद होता है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि वेद में सब विषय हैं। इसी कारण पुरातन ऋषि-मुनि अपने ग्रन्थों में प्रमाणों का परिगणन करते हुए वेद को शब्दप्रमाण में प्रधान स्थान देते हैं। महर्षि कणाद ने तो वेद को प्रमाण ही इसलिए माना है कि वेद में लोक-परलोक-सम्बन्धी सभी विषयों का निरूपण है-

तद्वचनादाम्नावस्य प्रामाण्यम् ।।[6]

धर्म का निरूपक होने से वेद का प्रामाण्य है और धर्म का लक्षण करते हुए वे कहते हैं।

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्म ।।[7]

जिससे लोकोन्नति (भौतिक समृद्धि) तथा मोक्ष की सिद्धि हो, उसे धर्म कहते हैं। सुतरां लोकपरलोकसम्बन्धी कल्याणप्राप्ति के साधनों का नाम धर्म है और वेद धर्म का प्रतिपादक है, अतः वेद सब विषयों का प्रतिपादक है। शिल्पशात्रादि के कर्ता अपने-अपने ग्रन्थों को वेदमूलक बताकर यह घोषित कर रहे हैं कि वेद में सब विषय, सब विद्याएँ हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में दिग्दर्शनमात्र कराने के लिए ब्रह्मविद्या (जिसमें परमात्मा, आत्मा, मन आदि की विद्या है), वेदोक्त धर्म, सृष्टि-विद्या, पृथिव्यादिलोकभमण, आकर्षणानुकर्षण, प्रकाश्य-प्रकाशक, गणितविद्या, नौविमानादिविद्या (इसमें सब प्रकार के यानों की चर्चा है), तार-विद्या, वैद्यकशात्र, राजाप्रजाधर्म, वर्णाश्रमधर्म, ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना, पुनर्जन्म, पञ्चमहायज्ञ आदि विषयों का उल्लेख किया है। उनका वेदभाष्य देखने से विद्युद्विद्या, शत्रात्रविद्या, भूगर्भविद्या, खगोलविद्या, जलविद्या आदि अनेक विद्याओं का ज्ञान होता है। हाँ, यह ठीक है कि वेद में इन विद्याओं का विस्तार से वर्णन नहीं है।

क्रियात्मक अनुभव या गहराई में जाकर किसी वस्तु का अन्वेषण करना तथा उसके विषय में विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करना विज्ञान कहलाता है। सत्य विद्याओं के अन्तर्गत ईश्वर, जीव, प्रकृति तीनों का समावेश होता है। जहाँ आज का विज्ञान प्रकृति के कुछ रहस्यों को यत्रों की सहायता से जान पाया है वहाँ हमारे ऋषि-मुनियों ने ध्यान-समाधिस्थ होकर वैदिक सूत्रों का रहस्योद्घाटन किया है। न केवल प्रकृति अपितु आत्मा-परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव और उनका साक्षात्कार करने के अनेक उपाय भी वेदों में बतलाये हैं। इनके जाने बिना मानव जीवन का उद्देश्य पूरा नहीं होता और न ही सन्तुष्टि होती है। उपनिषद् कहती है-

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा ब्रह्मणोऽविज्ञाय नरः सुखी भविष्यति ।।[8]

जब लोग आकाश को चटाई की भाँति लपेटने में समर्थ हो जायेंगे तब बिना ब्रह्म को जाने भी लोग सुखी रह सकेंगे। इसीलिये यजुर्वेद के अन्तिम अध्याय में सम्भूति और विनाश, अविद्या और विद्या दोनों को जानने के लिये आदेश दिया है। जैसा की हम जानते हैं कि वेदों में अनेक प्रकार का ज्ञान विज्ञान मिलता है उनमें से कुछ का दिग्दर्शन यहां प्रस्तुत किया गया है।

सृष्टि उत्पत्ति विज्ञान का स्वरूप

वेदों में सृष्टि की उत्पत्ति को समझाते हुए कहा गया है-

हिरण्यगगर्भ समवर्ततााग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतों कस्मै देवाय हविषा विधेम।।[9]

हिरण्यगर्भ जो परमेश्वर है वही एक सृष्टि के पहले वर्तमान था जो इस सब जगत् का स्वामी है और वही पृथिवी से लेके सूर्यपर्यन्त सब जगत् को रचके धारण कर रहा है। इसलिए उसी सुख स्वरूप परमेश्वर देव को ही हम लोग उपासना करें, अन्य की नहीं।

यत् परममवमं यज्ञ मध्यमं प्रजापतिः संसृजे विश्वरूपं ।
कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र यन्न प्राविशत् कियत्तद् बभूव ।।[10]
देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसञ्च ये।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः।।[11]

जो उत्तम मध्यम और नीच स्वभाव से तीन प्रकार का जगत् होता है, उस सबको परमेश्वर ने ही रचा है। उसने इस जगत् में नाना प्रकार की रचना की है। और एक वहीं इस सब रचना को यथावत् जानता है। और इस जगत् में जो कोई विद्वान् होते हैं, वे भी कुछ-कुछ परमेश्वर की रचना के गुणों को जानते हैं। वह परमेश्वर सबको रचता है, और आप रचना में कभी नहीं आता।

विद्वान् अर्थात् पण्डित लोग और सूर्य्यलोक भी अर्थात् यथार्थ विद्या को जानने वाले, अर्थात् विचार करने वाले, अर्थात् गानविद्या के जानने वाले, सूय्र्यादि लोक, और अर्थात् इन सब की त्रियां, ये सब लोग और दूसरे लोग उसी ईश्वर के सामर्थ्य से उत्पन्न हुए हैं। अर्थात् जे प्रकाश करने वाले और प्रकाशस्वरूप सूय्र्यादि

लोक, और अर्थात् चन्द्र और पृथिवी आदि प्रकाश रहित लोक, वे भी उसी के सामर्थ्य से उत्पन्न हुए हैं। वेदो में इस प्रकार के सृष्टि विधान करने वाले मन्त्र बहुत हैं।

भौतिक विज्ञान का स्वरूप

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषञ्च।[12] सूर्य सौर मण्डल का आत्मा है जो अपनी आकर्षण शक्ति और ऊर्जा से सभी ग्रह- उपग्रहों को नियंत्रित और गति दे रहा है। सूर्य की ऊर्जा से ही सृष्टि चक्र चल रहा है। सूर्य पृथ्वी से ब्रघ्नः अर्थात् लाखों गुणा बड़ा है, जिसमें अपान (हाइड्रोजन) और हीलियम गैसों की प्रधानता है। हाइड्रोजन के परमाणु सूर्य के केंद्र की ओर संलयन क्रिया द्वारा निपीड़ित हो रहे हैं, जिसके कारण अपार ऊर्जा का उत्सर्जन होता है। यही ऊर्जा ग्रह-उपग्रहों को ऊर्जायमान कर रही है। इस ऊर्जा की गति एक सैकिण्ड में एक लाख छियासी हजार मील है। किरण ऊर्जा को सूर्य से पृथिवी पर आने में 8 मिनट 10 सेकंड लगते हैं। तरणिर्विश्वदर्शतः[13] मत्र का अर्थ करते हुये सायणाचार्य ने किसी प्राचीन आचार्य का वचन उद्धृत किया है जो पृथिवी से सूर्य की दूरी जानने के लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

योजनानां सहसे द्वे द्वे शते च योजने।
एकेन निमिषार्धेन क्रममाण नमोऽस्तुते ।।

आधे निमेष अर्थात् पलक झपकने में जितना समय लगता है उसके आधे समय में सूर्य की किरणें दो हजार दो सौ दो योजन की दूरी तय कर लेती हैं। आधा निमेष एक सेकंड का दशों भाग (लगभग 8/75) के बराबर होता है और योजन की लम्बाई 9 मील। इस प्रकार गणना करने पर यह समय वर्तमान समय के वैज्ञानिकों की गणना के समान ही निकलता है। पूर्व के आचार्यों ने किस विधि से यह गणना की है यह आश्चर्यजनक है। सूर्य अपनी किरणों की आकर्षण शक्ति से पृथिवी को धारण किये हुये है। दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखै[14] चकृषे भूमिम्[15] सूर्य अपनी कीली पर और पृथिवी सूर्य के चारों और घूमती है।

समाववर्ति पृथिवी समुषा समु सूर्य। समु विश्वमिदं जगत् स सूर्य... ववृत्याद् रथ्येव चक्रा[16] सूर्य ऊर्जा का अखण्डस्रोत है जिसमें सात प्रकार की ऊर्जा विद्यमान है।

अधुक्षत् पिप्युषीमिषम् ऊर्ज सप्तपदीमरिः।
सूर्यस्य सप्तरश्मिभिः ।।[17]

पृथिवी-वैज्ञानिकों की यह मान्यता है सूर्य से पृथिवी की उत्पत्ति हुई है। अथर्ववेद में कहा है कि है पृथिवी सूर्य के हाथ से दी गई वस्तु के समान है। बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि[18] ऋग्वेद के एक मत्र में भी यही कहा है कि वरुण ने सूर्य से पृथिवी को बनाया। वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण[19] । पृथिवी में आकर्षण शक्ति-भास्कराचार्य द्वितीय ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्त शिरोमणि में कहा है-

आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुं स्वाभिमुं स्वशक्त-या।
आकृष्यते तत् पततीव भाति समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे।।[20]

पृथिवी में आकर्षण शक्ति है अतः वह ऊपर की भारी वस्तु को अपनी ओर खींच लेती है और वह वस्तु पृथिवी की और गिरती हुई सी लगती है।

जल-जल संघाते धातु से जल की व्युत्पत्ति होने से यह स्वयं ही अपने आप को यौगिक होने को बतला रहा है।

मित्रं हुवेपूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्।
धियं घृताची साधन्ता।[21]

जल की प्राप्ति के लिये मित्र (आक्सीजन) और वरुण (हाइड्रोजन) को ग्रहण करता हूँ। हाइड्रोजन के 2 अणु और आक्सीजन का एक अणु विद्युत् तरंग प्रवाहित करने पर जल में बदल जाते हैं। ऋग्वेद के सप्तम मण्डल में जल की उत्पत्ति कैसे हुई इसका वर्णन किया है।

विद्युतो ज्योतिः परिसंजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतांत्वा।
उतासि मैत्रावरुणो वशिष्ठ उर्वश्यां मनसोऽधि जातः।
कुम्भे रेतः सिषिचतु समानम्। ततो जातमाहुर्वशिष्ठम्।[22]

एक कुम्भ (परखनली) में मित्र और वरुण का रेतस् (वीर्य, कण) उचित मात्रा में डाला गया उससे वशिष्ठ की उत्पति हुई। इस कार्य के लिये विद्युत् प्रवाहित की गई। उर्वशी विद्युत् का नाम है, जिसके सम्पर्क में आने पर मित्र और वरुण का रेतस्, तेज च्युत हो गया और जल की उत्पत्ति हुई। वशिष्ठ जल को कहते हैं।

अग्नि-एक ही अग्नि द्यौ लोक में सूर्य, अन्तरिक्ष में विद्युत् और पृथिवी पर भौतिक अग्नि के रूप में विद्यमान हो रहा है। सूर्य अग्नि का मुख्य स्रोत है। ऊर्जा, प्रकाश, दाहकता, गति, सन्धान, विभाजन, शोधन, सप्रेषण आदि बहुत सारे गुण

अग्नि के बतलाये हैं। वेदों में अग्नि को अमर कहा है।

मत्रेषु अग्निरमृतो निधायि।[23]

अग्निरमृतो अभवद् वयोभिः।।[24]

ऊर्जा के रूप में अग्नि अविनाशी है। आज का विज्ञान यह मानता है कि ऊर्जा न तो उत्पन्न की जा सकती है और न ही नष्ट होती है। इसका केवल रूपान्तरण मात्र होता है। यह सर्वव्यापक है जो कि द्युलोक, अन्तरिक्ष और भूमि के प्रत्येक कण में व्याप्त है।

विश्वकेतु भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणात्।[25]

सूर्य से अग्नि की उत्पत्ति, आकाश में रहने का स्थान और भूमि में इसका केंद्र है। दिवितेजन्म अन्तरिक्षे नाभिः पृथिव्यामधि योनिरित्[26]

पृथिवी में स्थित अग्नि का आविष्कार सबसे पहले अधर्वा ने किया।

त्वामग्रे पुष्करादधि अथर्वा निरमन्धत।

मूर्धी विश्वस्य वाघतः ।।[27]

अधर्वात्वा प्रथमो निरमन्यदने[28]

यह अग्नि अरणी काष्ठ को घर्षण या मन्थन करने से प्रकट होती है।

अरण्योनिहितो जातवेदाः[29]

दो पत्थरों के परस्पर टकराने से भी अग्नि प्रकट होती है।

योश्मनोरन्तराग्नि जजान[30]

भूगर्भ में स्थित अग्नि को पुरीष्य कहते हैं। अथवों ने इसका दोहन किया। अथर्वा स्थितप्रज्ञ वैज्ञानिक का नाम है। भूगर्भ से प्राप्त अग्नि को विश्वभरा अर्थात् समस्त विश्व का पोषण करने वाली कहा है। पुरीष्योऽसि विश्वभरा अथर्वात्वा प्रथमोनिरमन्थदने।[31] कोयला, पेट्रोल, गैस आदि की प्राप्ति भूमि का खनन करने से ही होती है। इसी भाँति समुद्र में भी तेल और गैस के विशाल भण्डार हैं।

अपांपृष्ठमसि योनिरने समुद्रमभितः पिन्वमानम् [32]अग्नि ही परमाणुओं को गति देती है। अग्नि की ऊर्जा से ही प्रत्येक परमाणु गतिमान् हो रहा है।

अग्रिमूंधा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।

अपां रेतांसि जिन्वति।।[33]

वायु- हमारी पृथिवी के चारों ओर वायुमण्डल व्याप्त हो रहा है जिसके कारण

पृथिवी छिन्न-भिन्न नहीं होती। वायु द्वारा ही समुद्र का जल उठाया जाता है और वह वर्षा का हेतु बनता है। पृथिवी से 25-40 किलोमीटर ऊपर ओजोन की परत है जो आक्सीजन का सघनीभूत रूप है। यह सूर्य से उत्सर्जित हानिकारक किरणों को अवशोषित कर उन्हें भूमि पर नहीं आने देती। वायु में 78 प्रतिशत नाइट्रोजन, २१ प्रतिशत आक्सीजन और एक प्रतिशत धूल के कण तथा अन्य गैसें हैं। नाइट्रोजन आक्सीजन की तीव्रता को मन्द करके उसे श्वसन और ज्वलन क्रिया के लिये सक्षम बनाती है। यह निक्रिय गैस है परन्तु वर्षा के समय विद्युत् चमकने पर यह जल बिन्दुओं में घुलकर खाद का कार्य करती है। इसीलिये वर्षा का जल कृषि के लिये सर्वेत्तम माना गया है। वायु में विद्यमान आक्सीजन सभी जीवधारियों को प्राण ऊर्जा प्रदान करती है और अनेक रोगों को हरती है।

यददो वात ते गृहे अमृतस्य निधिर्हितः।
ततो तो देहि जीवसे।।[34]

ये दो वायु प्रवाहित हो रही हैं। एक प्राणवायु जीवन, बल, स्फूर्ति, उत्साह और आरोग्य देने वाली है, जिसे श्वास द्वारा भीतर लिया जाता है। दूसरी प्रश्वास द्वारा शरीर के मल रोगादि को बाहर निकाल देती है।

द्वाविमौवातो वात आ सिन्धोरापरावतः।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्योवातु यद्रपः ।।[35]

यहाँ प्राणायाम का महत्त्व बतलाया है और कहा है कि जो कोई इस विद्वान् अर्थात् प्राण विद्या को जाननेवाले का शिष्य होता है, वह प्राण का निरोध करता है। यदि प्राण का निरोध नहीं करता, प्राण वृद्धावस्था से पहले ही उसे छोड़ जाते हैं अथवा वह रोगी रहता है।

स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि।
न च प्राण रुणद्धि सर्व ज्यानिं जीयते न च सर्व ज्यानि जीयते
पुरैनं जरसः प्राणो जहाति।[36]

शिल्प विज्ञान का स्वरूप

शिल्प विज्ञान में वास्तुशात्र, अत्र-शत्र, विमानविद्या एवं अन्य दैनिक जीवन

में उपयोग की जाने वाली वस्तुओं की गणना होती है।

वास्तु शास्त्र - ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में वास्तुशात्र की प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। सर्वप्रथम राजा के लिये लोहे के दुर्ग बनाने के लिये कहा है और सैनिकों के लिये कवच।

वर्म सीव्यध्वं बहुलापृथूनि पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा।[37]

न केवल राजा अपितु प्रजाजनों के लिये भी वातानुकूलित गृह निर्माण करने को कहा है

आयने ते परायणे दूर्वारोहतु पुष्पिणी।
मध्य हदस्य वो गृहाः पराचीना मुखाकृधि ।।
हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परिव्ययामसि।
शीत हदा हि नो भुवोऽग्निष्कृणोतु भेषजम्।।[38]

हे मनुष्यो! तुम्हारे घर तालाब के मध्य में अथवा उसके समीप होवें जहाँ चारों ओर घास का मैदान और तालाब में कमल के फूल खिले हो। ये घर वातानुकूलित अर्थात् बर्फ की पतली परत से आच्छादित हों। उनमें शीत के निवारण के लिये अग्नि की भी समुचित व्यवस्था एवं वायु का निर्वाध प्रवेश होना चाहिये।

अथर्ववेद का एक पूरा सूक्त शाला निर्माण का वर्णन करता है। इसमें दो पक्ष (कमरों) से लेकर दस कमरों युक्त शाला निर्माण करने का विधान किया है।[39]

यह शाला वास्तुशात्र के जाननेवाले विद्वान, कुशल शिल्पियों द्वारा माप एवं मानचित्र के अनुसार बनानी चाहिये। घर या शाला में खाद्य सामग्री, पाकशाला, यज्ञशाला, स्त्रियों के लिये अलग-अलग प्रकोष्ठ, सभी के लिये बैठक एवं अतिथि कक्ष की व्यवस्था होनी चाहिये।

हविर्धानं अग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः। सदो देवानामसि देवि शाले....[40]

अथर्ववेद में जहाँ कई मंजिलों वाले घरों के निर्माण के लिये कहा है वहाँ ऐसे लघु गृहों को बनाने का विधान है जिन्हें आवश्यकता के अनुसार स्थानान्तरित किया जा सके। जैसे आजकल तम्बू या विवाहादि के अवसर पर अनेक प्रकार के गृहों की रचना की जाती है।

मा नः पाशं प्रतिमुचो गुरुर्भारो लघुर्भव।
वधूमिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि।।[41]

वास्तु शात्र के प्रमुख ग्रन्थ समरांगणसूत्रधार, मानसार, मयमत, अपराजित पृच्छा, बृहत् शिल्पशात्र, वास्तुशात्र (विश्वकर्मा) आदि 24 ग्रन्थ उपलब्ध हैं जिनमें 12 मंजिल तक गृह निर्माण करने का वर्णन किया है।

अस्त्र-शस्त्र निर्माण-जिसे फेंक कर शत्रु पर प्रहार किया जाये उसे अस्त्र कहते हैं। इसके दो भेद हैं। 1. मंत्रमुक्त, 2. यंत्रमुक्त। जिस अस्त्र की प्रणाली स्वतः चालित हो उसे मत्रमुक्त कहते हैं। जैसे आजकल के राकेट या मिसाइल। जो किसी यंत्र या मशीन से छोड़ा जाये उसे यंत्रमुक्त कहते हैं यथा तीर, बन्दूक और तोप से छोड़े जाने वाले गोले-गोलियाँ। जिन्हें हाथ में पकड़ कर प्रहार किया जाये उसे शस्त्र कहते हैं जैसे तलवार, भाला, छुरिका, गदा आदि।

आग्नेयात्र-तेषां वो अग्निमूढानामिद्रो हन्तु वरं वरम्।[42]
चक्षुषि.... अग्निरादत्तां पुनरेतु पराजिताः[43]

इसके प्रयोग से अग्नि की ज्वाला चारों ओर फैल जाती थी, जिसकी लपट से व्यक्ति अन्धा हो जाता था और उसका धुंआ मूर्छित कर देता था।
वायव्यात्र-अग्रेर्वातस्य भ्राज्या तान् विषूचो विनाशय।[44]

इसके छोड़े जाने पर तीव्र आँधी चलने लगती थी और शत्रु छिन्न-भिन्न हो जाते थे।
तामस अत्र-तां विध्यत तमसापव्रतेन यथेषामन्यो अन्यं न जानात्।[45]

यह अस्त्र वर्तमान समय के अनुगैस के गोले के तुल्य होता था। इसके धुएँ से चारों ओर अन्धकार छा जाता था और शत्रु सैनिकों का दम घुटने लगता था जिससे किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर वे इधर-उधर भागने लगते थे।
इद्र का वज-अभ्येनं वजमायसं सहस्र भृष्टिः वजेण त्रिषन्धिना[46]

यह लोहे का बना और तीन जोड़ों वाला होता था जिसे त्रिषन्धि वज्र कहते थे। यह विद्युत् अथवा डायनामाइट जैसा आयुध था जिसके प्रहार से सहस्रों सैनिकों का एक बार में ही वध किया जाता था। दिव्यात्रों के अतिरिक्त वेदों में धनुष-बाण, असि, परशु, चक्र, ऋष्टि और सीसे की गोली का भी वर्णन मिलता है।

विमान विज्ञान का स्वरूप

महर्षि भारद्वाज कृत यंत्र सर्वस्व के वैमानिक अध्याय में कहा है-

निर्मथ्य वेदाम्बुधिं भरद्वाजो महामुनिः ।
नवनीतं समुद्धृत्य यत्र सर्वस्व रूपकम् ।।
सूत्रै पञ्चशतैर्युक्तं व्योमयानं प्रधानकम् ।
वैमानिक प्रकरणमुक्तं भगवता स्फुटम् ।।

भारद्वाज मुनि कहते हैं कि वेदरूपी समुद्र के मन्थन से जो नवनीत प्राप्त हुआ है उसके आधार पर पाँच सौ सूत्रों बाला वैमानिक प्रकरण प्रस्तुत किया जाता है। जो पृथिवी, जल, अन्तरिक्ष तीनों में पक्षी की भांति आ जा सके और जिसके द्वारा द्वीप-द्वीपान्तर तथा दूसरे लोकों की यात्रा की जा सके उसे विमान कहते हैं। इस ग्रन्थ में विमानों की रचना, उनके भेद, रहस्य, विविध यन्त्र और विमान चलाने की विधियों का विस्तार से वर्णन किया है। महर्षि भारद्वाज का यह कथन अतिशयोक्ति न होकर सत्य पर आधारित है। वेदों में विमान के लिये दिव्य रथ, रथ या आकाशीय नौका आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद में तीन सीट एवं तीन चक्रों वाले त्रिकोणाकार रथ का वर्णन आया है–

त्रिबन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।[47]

अन्यत्र सब लोकों में जानेवाले सात चक्र, पाँच इञ्जिन, चारों ओर मुड़ सकने और संकेत से चलने वाले दिव्य रथ का वर्णन है-

सोमापूषणा रजसो विशालं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम् ।
विषुवृत्तं मनसा युज्यमानं... पञ्चरश्मिम् ।।[48]

एक अन्य मंत्र में ऋभु देवों के दिव्य रथ का वर्णन करते हुये कहा है कि इसमें घोड़े नहीं हैं और न ही लगाम। तीन चक्रों बाला यह रथ अन्तरिक्ष में सर्वत्र भमण करता है।

अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथत्रि चक्र परिवर्ततेरजः ।[49]

अश्विनी कुमारों द्वारा निर्मित रथ तैलीय पदार्थों से चलता था जो धुलोक और अन्तरिक्ष में सर्वत्र जा सकता था।

आ वां रथो रोदसी बद्वधानो घृतवर्तनि पविभी रुचानः ।[50]

इन रचों का निर्माण ऋभुशिल्पी करते थे। उनके इन गुणों के कारण ऋभुओं को आदरार्थ देवता की उपाधि दी गई।

तक्षन् रथं सुवं अनश्वम्...[51]
तेन देवत्वम्भवः समानशः[52]

जिस समय विमानों का आविष्कार नहीं हुआ था उस समय महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में विमान विद्या को बेदों के प्रमाणों से प्रमाणित किया और उसके आधार पर शिवकर बापू तलपदे ने विमान का निर्माण करके मुम्बई के चौपाटी में उड़ा कर दिखाया। धनाभाव के कारण यह कार्य आगे नहीं बढ़ सका।

शिल्प विज्ञान के अतिरिक्त वेदों में कृषि विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, औषधी विज्ञान, पशु-पक्षी विज्ञान, गणित, ज्योतिष, वृष्टि, पर्यावरण एवं भूगर्भ सम्वन्धी विवरण उपलब्ध होता है, जिसकी वर्तमान विज्ञान से अधिकांश में समानता देखी जाती है।

सन्दर्भाः-

1 यजु .31/1
2 यजु 1/5/6
3 ऋग्वेदादि भा .भू .वेद वि .वि .।
4 छां ७।१।२
5 छा० उ० ७/११३
6 चै० १११।६
7 बै० १११।२
8 श्वेताश्व०
9 ऋ .अ .८। अ .७। व .३। मं .१
10 अथर्व, का.10/अनु .4/मं .8.
11 अथर्व .का.11/प्रपा.24/अनु .4/4.27
12 ऋ .१/११५/१
13 ऋग्वेद १/५०/४
14 यजु .५/१६
15 ऋ .१/५२/१-२
16 यजु .२०/३०)ऋ१०/८९/२(
17 ऋ .८/७२/६
18 अथर्व .१८/३/२५-३५
19 ऋ .५/८५/५
20 सिद्धान्त भुवन-१६
21 प्रऋ .१/२/७
22 ऋ .७/३३/१०-१३
23 यजु .१२/२४
24 यजु .१५/२५
25 यजु .१२/२३
26 यजु .११/१२
27 ऋ .६/१६/३
28 यजु, ११/३२
29 ऋ .३/२९/२
30 ऋ .२/१२/३
31 यजु .११/३२
32 यजु .११/२९

33 यजु .३/१२
34 ऋ .१०/१८६/३
35 ऋ .१०/१३७/२
36 अथर्व .११/३/५४-५६
37 अथर्व .१९/५८/४
38 अथर्व, ६/१०६/१-३
39 अथर्व .९/३/२१
40 अथर्व .९/३/७
41 अथर्व .९/३/२४
42 अथर्व .६/६७/२
43 अथर्व .३/१/६
44 अथर्व .३/१/५
45 अथर्व .३/२/६
46 अथर्व .११/१०/३
47 ऋ .१/११८/२
48 ऋ .२/४०/३
49 ऋ ४/३६/१
50 ऋ .७/६९/१
51 ऋ .१/१११/१
52 ऋ .३/६०/२

सन्दर्भ ग्रन्थ-

- वेदों में विज्ञान, ऋ.भा.भू. बृहद् विमान शात्र, धनुर्वेद।
- उपनिषद् रहस्य एकादशोपनिषद्, महात्मा नारायण स्वामी, प्रकाशक विजय कुमार गोविन्द राम हांसानन्द (संस्करण - 2021)
- ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका, महर्षि दयानन्द सरस्वती, प्रकाशक- रामलाल कपूर ट्रस्ट, (संस्करण-चतुर्थ 2010)

❋ ❋ ❋